International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद का वर्तमान समय में प्रासंगिकता

डॉ. सुप्रिया शालिनी

सहायक आचार्या, दर्शनशास्त्र विभाग, एस.एम. कॉलेज भागलपुर,
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय भागलपुर, बिहार

सारांश
प्रस्तुत शोध–पत्र पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद की अवधारणा का समकालीन परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करता है। एकात्म मानववाद भारतीय चिंतन परंपरा पर आधारित एक ऐसी समग्र वैचारिक प्रणाली है, जो मानव जीवन के भौतिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक आयामों के संतुलित विकास पर बल देती है। यह विचारधारा पूँजीवाद और समाजवाद जैसी पाश्चात्य अवधारणाओं से भिन्न एक स्वदेशी विकास मॉडल प्रस्तुत करती है, जिसमें व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के बीच समन्वय को केंद्रीय स्थान दिया गया है। इस अध्ययन में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के जीवन, व्यक्तित्व एवं वैचारिक पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए एकात्म मानववाद की मूल अवधारणा, उसके प्रमुख सिद्धांतों तथा भारतीय दार्शनिक परंपरा में उसके स्थान को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत एकात्म मानववाद केवल एक वैचारिक दर्शन नहीं, बल्कि वर्तमान समय की सामाजिक, आर्थिक और नैतिक समस्याओं के समाधान हेतु एक संतुलित एवं मानव–केंद्रित दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसकी प्रासंगिकता भविष्य में और अधिक बढ़ सकती है।

मुख्यशब्द– पं. दीनदयाल, एकात्मक मानववाद, पूँजीवाद एवं समाजवाद, नैतिक मूल्य

प्रस्तावना
पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तावित एकात्म मानववाद, एक प्रासंगिक दार्शनिक ढाँचा प्रस्तुत करता है जो भौतिक प्रगति को नैतिक मूल्यों के साथ जोड़ता है। एकात्म मानववाद अंत्योदय, विकेन्द्रीकृत शासन और संसाधनों के स्थायी उपयोग जैसे मूल्यों को बढ़ावा देकर आर्थिक असमानता और पर्यावरणीय संकट जैसे समकालीन चुनौतियों के स्वरुप को दर्शाता है। [1] एकात्म मानव दर्शन का एक मुख्य सिद्धांत धर्म की अवधारणा है, जिसे एक सार्वभौमिक नैतिक व्यवस्था के रूप में देखा जाता है जो व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यों का मार्गदर्शन करती है, जो पश्चिमी विचारधाराओं के विपरीत है जो बड़े पैमाने पर नैतिक आयामों की उपेक्षा करती हैं। समाज के बारे में उपाध्याय का जैविक दृष्टिकोण एक राष्ट्र को साझा मूल्यों और ऐतिहासिक निरंतरता द्वारा परिभाषित एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखता है, जो व्यक्तियों, समाज एवं राष्ट्र के बीच परस्पर निर्भरता का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ नैतिक शासन और सांस्कृतिक अखंडता सर्वोपरि है। एकात्म मानव दर्शन विकेंद्रीकरण और आत्मनिर्भरता को भी बढ़ावा देता है, जो सत्ता के अत्यधिक केंद्रीकरण का विरोध करता है जो नागरिकों को शासन से अलग करता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय की ग्राम स्वराज की अवधारणा स्थानीय समुदाय के सशक्तिकरण तथा सहभागी विकास पर विशेष बल देती है, जो जमीनी स्तर पर लोकतंत्र और समावेशी विकास के समकालीन प्रयासों के अनुरूप है। [2] यह दर्शन अंत्योदय जैसी अवधारणाओं के माध्यम से भारतीय नीतियों को प्रभावित करता है, जिसका उद्देश्य हाशिए पर पड़े लोगों का उत्थान करना है, जो शासन के लिए एक मानवीय मानदंड स्थापित करता है जो वितरणात्मक न्याय की बात करता है। अपने समृद्ध योगदान के बावजूद, एकात्म मानव दर्शन को इसकी अमूर्त प्रकृति और व्यावहारिक कार्यान्वयन चुनौतियों के संबंध में आलोचना का सामना करना पड़ता है। विद्वान एक विविध समाज में बहुलवाद और लोकतंत्र के साथ इसकी अनुकूलता पर सवाल उठाते हैं। यह अध्ययन एकात्म मानव दर्शन की दार्शनिक नींव, मुख्य सिद्धांतों और समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण करना चाहता है, इसकी तुलना पश्चिमी विचारधाराओं से करता है और वर्तमान राजनीति एवं सार्वजनिक नीतियों में इसके अनुप्रयोग का मूल्यांकन करता है। एकात्म मानववाद को भारतीय राजनीतिक और दार्शनिक विचारधारा में एक महत्वपूर्ण योगदान के रूप में स्थापित किया गया है, जो परंपरा को आधुनिकता के साथ, नैतिकता को विकास के साथ, और व्यक्तिवाद को सामूहिक

जिम्मेदारी के साथ जोड़ने की कोशिश करता है। समकालीन संदर्भ में इस दर्शन पर फिर से विचार करके, यह अध्ययन भारत और उससे बाहर स्थायी, समावेशी व नैतिक रूप से आधारित विकास के लिए एक मार्गदर्शक ढांचे के रूप में इसकी स्थायी प्रासंगिकता तथा क्षमता को दिखाने का प्रयास करता है।

एकात्म मानववाद की अवधारणा

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा सन् 1965 में प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन, मानव जीवन, समाज और विकास को समझने के लिए एक स्वदेशी भारतीय संरचना प्रस्तुत करता है। यह पश्चिमी वैचारिक धारणाओं, विशेषकर पूंजीवाद और समाजवाद की सीमाओं के प्रतिपादन के संदर्भ में भारत की सामाजिक–सांस्कृतिक वास्तविकताओं का दार्शनिक उत्तर प्रस्तुत करता है। एकात्म मानव दर्शन एक समग्र और मूल्य–उन्मुख दृष्टिकोण स्थापित करना चाहता है जो भौतिक प्रगति को नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कल्याण के साथ एकीकृत करता है। इस दर्शन का मूल तत्त्व की यह मान्यता है कि मानव विकास में चार आयाम शरीर, मन, बुध्दि एवं आत्मा में समग्रता निहित है। प्रत्येक आयाम का महत्व के अनुसार शरीर शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, मन भावनात्मक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं से संबंधित है, बुद्धि तर्कसंगत मनोविचार एवं नैतिक निर्णय लेने पर केंद्रित है, तथा आत्मा आध्यात्मिक चेतना एवं नैतिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। [3] उपाध्याय ने कहा कि किसी भी आयाम की उपेक्षा विकृत विकास की ओर ले जाती है, और सच्ची प्रगति के लिए संतुलित दृष्टिकोण का आग्रह किया। एकात्म मानववाद व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की परस्पर निर्भरता पर भी प्रकाश डालता है, जो पूंजीवाद में निहित अत्यधिक व्यक्तिवाद और समाजवाद के सामूहिकतावाद का विरोध करता है। यह सिद्धांत बताता है कि व्यक्ति अपनी पहचान और जीवन का उद्देश्य अपने सामाजिक परिवेश से प्राप्त करता है, तथा इसके विपरीत समाज व्यक्तिगत विकास को प्रोत्साहित करता है। राष्ट्र को एक जीवित सांस्कृतिक इकाई के रूप में चित्रित किया गया है, जो नैतिक सांस्कृतिक ढाँचे के अनुरूप सामाजिक कल्याण की बात करता है। यह दर्शन व्यक्तियों, समाज और राष्ट्र के बीच समन्वय को रेखांकित करता है, जो एकात्म मानववाद को भारत में स्थायी राष्ट्र–निर्माण के लिए एक प्रासंगिक दृष्टिकोण के रूप में स्थापित करता है।

एकात्म मानववाद के प्रमुख सिद्धांत

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद, एक संतुलित, नैतिक और सांस्कृतिक रूप से जुड़ी विकास दर्शन पर आधारित है। इस दर्शन विकास के केंद्र में समग्र मानव विकास की अवधारणा है, जो इस बात पर विशेष बल देता है कि सकारात्मक प्रगति में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक आयाम शामिल होने चाहिए। उपाध्याय का मानना था कि अगर आर्थिक विकास से नैतिक पतन, असमानता या पर्यावरणीय क्षति होता है, तो उसे मानव उन्नति के बराबर नहीं माना जा सकता है। इसलिए, विकास को नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखना चाहिए, जिससे मानवीय गरिमा और सामाजिक सद्भाव की सुदृढ़ता सुनिश्चित की जा सकें। एकात्म मानववाद का एक विशिष्ट पहलू धर्म की इसकी व्यापक व्याख्या है। [4] उपाध्याय ने धर्म को केवल रीति–रिवाजों तक सीमित नहीं माना, बल्कि एक सार्वभौमिक नैतिक ढांचा माना जो व्यवहार और सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित करता है। उनका मानना था कि नैतिक मूल्यों के बिना समाज में भ्रष्टाचार एवं विघटन का भय रहता है, और उन्होंने लोकतांत्रिक शासन के साथ सामंजस्य व्यवस्थित कर सार्वजनिक जीवन का मार्गदर्शन केवल विधिक एवं संस्थागत स्वरुप में नहीं बल्कि नैतिक चेतना व सामाजिक उत्तरदायित्व से भी निर्देशित होना चाहिए। इसके अलावा, एकात्म मानववाद विकेंद्रीकरण और आत्मनिर्भरता की ओर केन्द्रित करता है। उपाध्याय ने राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण की आलोचना की, और एक विकेन्द्रीकृत प्रणाली की बात की जो स्थानीय समुदायों को अपने संसाधनों का प्रबंधन करने के लिए सशक्त बनाए। आत्मनिर्भरता (स्वावलंबन) आर्थिक स्वतंत्रता और स्थायी आजीविका को बढ़ावा देती है, जो सीधे बेरोजगारी और क्षेत्रीय असमानताओं जैसे समकालीन मुद्दों का समाधान करती है। इसके अलावा, उपाध्याय ने राष्ट्रवाद को केवल एक राजनीतिक संरचना के बजाय एक सांस्कृतिक और नैतिक जुड़ाव के रूप में देखा। उन्होंने राष्ट्र को साझा मूल्यों और अनुभवों से बनी एक जीवित इकाई माना, तथा राष्ट्रवाद के एक ऐसे स्वरूप की बात की जो विविधता का सम्मान करने के साथ ही सामाजिक सद्भाव एवं सामूहिक उत्तरदायित्व को बढ़ावा दे सकें। वैश्विक संदर्भ में, यह संस्कृति–आधारित राष्ट्रवाद समरूपीकरण और पहचान संकट के बीच सांस्कृतिक अखंडता संरक्षित करने की रणनीति प्रस्तुत करता है।

एकात्म मानववाद और पाश्चात्य विचारधाराएँ

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद का दर्शन बीसवीं सदी के राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य को आकार देने वाली पूंजीवाद व समाजवाद की प्रचलित विचारधाराओं के जवाब में सामने आया। यह इन प्रणालियों की मानव स्वभाव के बारे में संकीर्ण सोच की आलोचना करता है, और इसके बजाय भारत की सभ्यतागत भावना पर आधारित एक संरचना प्रस्तुत करता है, जो जीवन के नैतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करता है। पूंजीवाद के विपरीत, जो व्यक्तिवाद और लाभ संबंधी प्रोत्साहन पर आधारित है, एकात्म मानववाद इस विचार को अस्वीकार करता है कि व्यक्तिगत सफलता से सामाजिक कल्याण होता है, बल्कि यह नैतिक उत्तरदायित्व और सामूहिक हित को प्राथमिकता देता है। [5] उपाध्याय पूंजीवाद की आलोचना करते हैं क्योंकि यह भौतिकवाद, उपभोक्तावाद और आर्थिक असमानता उत्पन्न करता है, और सामाजिक दायित्वों एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित आर्थिक गतिविधियों की बात करते हैं। इसके विपरीत, समाजवाद की सामाजिक न्याय की चिंताओं को स्वीकार करते हुए, एकात्म मानववाद इसकी आलोचना करता है क्योंकि यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता को संकट में डालता है और अत्यधिक शक्ति के केंद्रीकरण के माध्यम से नौकरशाही की अक्षमता की ओर ले जाता है। यह एक संतुलित दृ ष्टिकोण का प्रस्ताव करता है जो व्यक्तिगत अधिकारों को सामाजिक जिम्मेदारियों के साथ एकीकृत करता है, विकेंद्रीकरण एवं सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देता है। एकात्म मानववाद की विशिष्टता भारतीय दार्शनिक परंपरा में इसके आधार से आती है, जो जीवन की परस्पर संबद्धता पर जोर देती है और धर्म को नैतिक आचरण एवं सामाजिक संरचनाओं के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत मानती है। यह दृष्टिकोण विविधता व एकता का सम्मान करता है, व्यक्तिगत एवं सामूहिक आवश्यकताओं के साथ–साथ भौतिक और आध्यात्मिक आकांक्षाओं को भी पहचानता है। [6] यह राष्ट्र को केवल एक राजनीतिक संरचना के बजाय एक नैतिक व सांस्कृतिक इकाई के रूप में परिभाषित करता है, जो प्राचीन अंतर्दृष्टि को समकालीन सामाजिक चुनौतियों के साथ मिलाकर पश्चिमी विकास एवं शासनात्मक शैली के लिए एक प्रासंगिक विकल्प प्रदान करता है।

वर्तमान समय में एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता

समकालीन विश्व, जो तीव्र गति से वैश्वीकरण, आर्थिक असमानता, पर्यावरण क्षरण तथा नैतिक संकटों से ग्रस्त है, पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के दर्शन का महत्व और भी बढ़ जाता है। एक ऐसा समग्र, मूल्यों पर आधारित संरचना प्रस्तुत करके जो भौतिक प्रगति को नैतिक व सांस्कृतिक आयामों के साथ जोड़ता है, एकात्म मानववाद वर्तमान समय की गंभीर चुनौतियों का सार्थक जवाब देता है। एकात्म मानववाद राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में संस्कृति के महत्व को उजागर करके इस सांस्कृतिक चुनौती का प्रतिरोध करता है, और ऐसे विकास संरचना की बात करता है जो स्थानीय परंपराओं का सम्मान करते हुए वैश्विक प्रभावों को भी शामिल करें। [7] यह दृष्टिकोण संस्कृति–आधारित राष्ट्रवाद को बढ़ावा देता है जो वैश्विक भागीदारी को सांस्कृतिक सम्मान के साथ संतुलित करता है।आर्थिक विकास के समानांतर उभरती सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ, बहिष्कार और गैर–बराबरी सामाजिक एकता के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती हैं। एकात्म मानववाद अंत्योदय के सिद्धांत के माध्यम से सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को प्राथमिकता देता है, जिसमें समाज के सबसे अंतिम और वंचित वर्गों के उत्थान को केंद्रीय लक्ष्य के रूप में स्थापित किया गया है। एकात्म मानववाद मानव और प्रकृति की आपसी निर्भरता को स्वीकार करते है, यह दृष्टिकोण सतत विकास की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत करता है, जिसमें वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भावी पीढ़ियों के जीवनोपयोगी अधिकारों और संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित किया जाता है। यह जिम्मेदार उपभोग, संसाधन–संरक्षण और आर्थिक गतिविधियों तथा पर्यावरणीय संतुलन के बीच सामंजस्य की आवश्यकता को रेखांकित करता है। अंततः, आधुनिक समाज में नैतिक मूल्यों का क्षरण एक गंभीर सामाजिक और वैचारिक संकट के रूप में उभरता है। एकात्म मानववाद धर्म को एक संकीर्ण आस्था–प्रणाली के रूप में नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक नैतिक दिशा–निर्देशक के रूप में पुनर्स्थापित करता है। सत्य, करुणा, कर्तव्यबोध और उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों की पुनर्वकालत करते हुए यह दर्शन नैतिक शिक्षा को शासन और सार्वजनिक जीवन से जोड़ने का आग्रह करता है। इस प्रकार, एकात्म मानववाद सामाजिक विश्वास, सामूहिक एकता और नैतिक चेतना की पुनर्स्थापना का प्रयास करते हुए समकालीन जीवन में व्याप्त नैतिक शून्य के प्रति एक सुसंगत और व्यवहारोन्मुख समाधान प्रस्तुत करता है।

एकात्म मानववाद की आलोचनात्मक समीक्षा

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद का दर्शन मानव विकास को सांस्कृतिक, नैतिक और सामाजिक समग्रता के समक्ष समझने का एक वैचारिक ढांचा प्रस्तुत करता है। यह दर्शन पाश्चात्य व्यक्तिवाद और भौतिकतावाद के विकल्प के रूप में मानव को केवल आर्थिक इकाई नहीं, बल्कि शरीर–मन–बुद्धि–आत्मा की एक अविभाज्य समग्रता के रूप में परिभाषित करता है। इसी कारण यह भारतीय बौद्धिक परंपरा में एक मौलिक और सांस्कृतिक रूप से अंतर्निहित विकास दृष्टि प्रदान करता है। इसके अलावा, परंपरा और आधुनिकता के बीच संबंध अस्पष्ट बना हुआ है, जिससे यह समझना कठिन हो जाता है कि पारंपरिक मानदंडों को शहरीकरण और तकनीकी प्रगति जैसी आधुनिक चुनौतियों के अनुसार कैसे ढाला जाए। वर्तमान वैश्वीकृत संदर्भ में, एकात्म मानववाद को स्थानीय आर्थिक पहलों को वैश्विक बाजारों के साथ एकीकृत करने की चुनौती का सामना करना पड़ता है, जो इस सिद्धांत की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है। संस्कृति–आधारित राष्ट्रवाद पर इस दर्शन का अत्यधिक आग्रह बहिष्करण की प्रवृत्तियों को जन्म देने का जोखिम उत्पन्न करता हैय अतः बहुलतावादी समाजों में समावेशिता और मूल्यगत विविधता की रक्षा हेतु इसकी सावधानीपूर्वक, संवेदनशील तथा संदर्भ–सापेक्ष व्याख्या अनिवार्य हो जाती है। [8] एकात्म मानववाद को व्यावहारिक रूप से लागू करने में संस्थागत बाधाएं आती हैं, जैसे कि अपर्याप्त प्रशासनिक क्षमताएं और स्थानीय सत्ता पदानुक्रम, जो असमानताओं को कम करने के बजाय उन्हें बढ़ा सकते हैं। शासन में नैतिक मूल्यों का एकीकरण सामाजिक चेतना और राजनीतिक इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है, और इन दोनों को चुनावी और नौकरशाही दबावों से कमजोर किया जा सकता है। इन आलोचनाओं के बावजूद, एकात्म मानववाद भारतीय राजनीतिक दर्शन में महत्वपूर्ण योगदान देना जारी रखे हुए है, जो नैतिक शासन तथा सतत विकास को बढ़ावा देने में इसकी प्रासंगिकता व प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए इसकी पुनर्व्याख्या और प्रासंगिक अनुकूलन की आवश्यकता पर जोर देता है।

निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के दर्शन की समीक्षा करता है और वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन करती है। यह एकात्म मानववाद की वैचारिक आधार, मुख्य सिद्धांतों, व्यावहारिक अनुप्रयोगों और सीमाओं का विश्लेषण करती है, और इसे पश्चिमी विचारधाराओं और आधुनिक विकास प्रतिमानों के एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में उजागर करती है। एकात्म मानववाद को मानव विकास के लिए एक समग्र ढाँचे के रूप में पहचाना जाता है जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक आयामों में सामंजस्य स्थापित करता है, एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ–साथ व्यक्तिगत हितों को बढ़ावा देकर पूंजीवाद व समाजवाद से अलग होता है। इस दर्शन के केंद्र में धर्म की अवधारणा है, जिसे एक सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत के रूप में समझा जाता है, जो नैतिक पतन और पर्यावरणीय क्षय जैसे समकालीन मुद्दों को संबोधित करता है, इसके साथ ही व्यक्तियों, समाज एवं राष्ट्र के बीच परस्पर निर्भरता पर जोर देता है। भारतीय राजनीतिक दर्शन और नीति–निर्माण की परंपरा में इस दृ ष्टि का प्रभाव अंत्योदय और आत्मनिर्भरता जैसी अवधारणाओं के माध्यम से स्पष्ट होता है, जो विकास को सामाजिक न्याय और स्थानीय स्वायत्तता से जोड़ती हैं; किंतु इसकी मानकात्मक अमूर्तता नैतिक मूल्यों के संस्थागत अनुप्रयोग को जटिल बना देती है। यह अध्ययन वैश्वीकरण, असमानता और नैतिक क्षरण को संबोधित करने में एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता का पुनर्मूल्यांकन करता है, सिद्धांत को व्यवहार से जोड़कर और पश्चिमी विचारधाराओं से तुलना करके भारतीय राजनीतिक विचार पर अकादमिक चर्चा में योगदान देता है। यह मानव–केंद्रित शासन के महत्व पर प्रकाश डालता है जो सामाजिक न्याय व नैतिक उत्तरदायित्व को शामिल करता है। भविष्य की संभावनाएँ इसके सिद्धांतों को आधुनिक वास्तविकताओं के अनुकूल बनाने पर निर्भर करती हैं, जिसके लिए संस्थागत ढाँचे और सहभागी तंत्र की आवश्यकता होती है, जबकि एक विविध समाज में समावेशिता बनाए रखना भी जरूरी है। एकात्म मानववाद एक न्यायपूर्ण तथा स्थायी समाज बनाने के लिए स्थायी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, और इसकी भविष्य की प्रासंगिकता सुनिश्चित करने के लिए निरंतर विद्वानों की भागीदारी आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पांडेय, रामबहादुर. पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्तित्व और कृतित्व. वाराणसी: चौखम्बा प्रकाशन, 2002
2. मिश्रा, गिरिजेश कुमार. आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारक. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2008

3. यादव, ए., एवं अवस्थी, एम. ओ. (2018). इंट्रीगल ह्यूमनिस्म: इन्ट्रीग्रेटिंग ह्यूनिस्म विथ मैनेजमेन्ट डेवलपमेन्ट, श्री दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन के विभिन्न आयाम, 1(1), 242–249
4. भिषीकर, सी. पी., पंडित दीनदयाल उपाध्याय: विचारधारा और दृष्टिकोण, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन। (राष्ट्र की अवधारणा), 2014, पृष्ठ 5
5. उपाध्याय, डॉ. मंजुला (2018), "दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव सोशल साइंस एंड ह्यूमैनिटी रिसर्च, खंड 5, अंक 1, पृष्ठ 172–177
6. नैन, अंसुइया (2019), "पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन और कृतित्व", द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, खंड LXXX, अंक 2, पृष्ठ 221–222
7. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन, नोयडा, 1994, पृष्ठ 3
8. सांबला, मनोज, युगपुरुष पंडित दीनदयाल उपाध्याय, राज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2017, पृष्ठ 188